उपसंहार

उ प सं हा र

मध्यकालीन भक्त-परंपरा के अनेक श्रेष्ठ भक्त कवियों में मीराँबाई का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है । राजस्थान के इतिहास में मीराँ ने भक्ति की निर्मल धारा बहाकर क्षात्रधर्म की भूमि को पवित्र बना दिया है । वह प्रेमयोगी श्रीकृष्ण की परम-भक्त है । वह श्रीकृष्ण की रस-माधुरी में मतवाली हो गयी है । श्रीकृष्ण के प्रेम में रंगकर अपनी दिव्य प्रेमसाधना से उसने केवल मरूभूमि राजस्थान को ही नहीं, वरन् संपूर्ण भारत को अपनी पावन-भक्ति से भीगो दिया है ।

मीराँ ने श्रीकृष्ण को प्राणधन-पति के रूप में अपनाया है और कृष्ण से उसने परम-भाव से भक्ति की है । परम भाव में भक्ति और प्रेम का सामंजस्य होता है । भक्ति का स्वरूप प्रेम में ही निरखता है । मीराँ ने भक्ति के क्षेत्र में उच्च स्थान पाया है । साथ ही प्रेम की पवित्र साधना से वह प्रेमयोगिनी भी बनी है ।

मीराँ का संपूर्ण जीवन करूणा की धारा है । इसलिए उसके पदों में करूणा एवं मर्म-मधुरता का स्वर स्पष्ट हुआ है । मीराँ को अपने उपास्य को प्राप्त करने के लिए आजीवन संघर्ष का सामना करना पड़ा है । उसके लिए मीराँ ने असह्य यातनाओं को भी सहा है । राजपरिवार की मर्यादाओं में बंधी-हिन्दू नारी, राजकुलीन वधु-मीराँ को अपने प्यारे श्रीकृष्ण को अपनी आँखों में बसाने में जिन विपत्तियों को झेलना पड़ा है,वह इतिहास के पन्नों पर वर्णित है ।

यह बात सच है कि मीराँ अपने जीवन में विष का प्याला पी गयी है । सूली की सेज पर सोई है । उसने परिवार के द्वंद, अत्याचार और लोक-निंदा को सहा है; किन्तु मीराँ संघर्षमय जीवन में वन्दनीय बनी है । मीराँ नारी रत्न है । वह एक भक्त कवयित्री है । उसका काव्य अलौकिक है । उसके पद उसकी अन्तरात्मा की पुकार हैं । उसके पदों में विरहिणी का आर्तक्रन्दन और आत्मनिवेदन है, साथ ही

संगीत की स्वाभाविकता, भावना की सुकुमारता भी है । इसलिए उसके पद हिन्दी साहित्यकी अपार निधि हैं ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध लिखने से पहले मेरे मन में जो प्रश्न उत्पन्न हुए थे उनका समाधान उपसंहार में देने की मैंने कोशिश की है ।

इस लघु शोध-प्रबंध के "प्रथम अध्याय" में मैंने मीराँबाई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दिया है । इसमें मैंने अन्य अनेक उपलब्ध समीक्षा ग्रंथों का आधार लेकर उसकी प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है ।

संसार की स्त्री-रत्न मीराँ का जन्म संवत 1561 में मेडतानगर के "कुडकी"नामक ग्राम में हुआ । मीराँ ने राठौड़ वंश में जन्म लिया । मीराँ के पिता का नाम "रत्नासिंह" और माता का नाम "कुसुम कंवर" था । मीराँ की माँ भक्त थी मीराँ का एक "जयमल" नाम का चचेरा भाई था, जो वैष्णव भक्त था । मीराँ का पारिवारिक वातावरण धार्मिक, सुसंस्कारित एवं राजकुलीन था । मीराँ के जन्म के कुछ समय पश्चात् ही मीराँ की माँ चल बसी । माँ की मृत्यु के बाद उसका शैशव उसके दादा जी की स्नेहमयी गोद में बीता । मीराँ का बचपन राजवैभव एवं लाड-प्यार में बीता; परंतु आगे चलकर उसका पूरा जीवन संघर्षमय बना ।

मीराँ अपने बचपन में ही दादा जी के प्रभाव में आकर साहित्य, संगीत, नृत्य आदि कलाओं में प्रवीण बन गयी । उसके दादा जी परम वैष्णव भक्त थे । उनकी धार्मिकता एवं भक्ति-भावना का प्रभाव मीराँ पर पड़ा । मीराँ ने श्रीकृष्ण को अपना उपास्य और जीवनसाथी माना और उसपर अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया ।

मीराँ का विवाह संवत् 1573 में चित्तोड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर भोजराज के साथ हुआ था । विवाह के समय मीराँ की उम्र 12 वर्ष की थी ।

मीरॉं के पति शान्त एवं शूर थे; किन्तु उसका वैवाहिक जीवन सुखी नहीं रहा । कुछ वर्षों बाद मीरॉं के पति का स्वर्गवास हुआ और उसे कठोर वैधव्य का सामना करना पड़ा । मीरॉं का ससुराल भी कुलीन एवं धार्मिक था । वह एकलिंग का उपासक था ।

मीरॉं का देवर महाराणा विक्रमजीत का स्वभाव उद्दण्ड था । उसने राजकुल की मर्यादा के लिए मीरॉं को अनेक कष्ट दिए । उसने मीरॉं की भक्ति में बाधा डालने के लिए दमन और अत्याचार का मार्ग अपना लिया था । मीरॉं की उदा नाम की एक ननद थी । उसने भी मीरॉं को भक्ति-पथ और साधु-संगति से विमुख करने की चेष्टा की थी । मीरॉं ने वैधव्य के बाद वैराग्य धारण कर सत्संग और गिरधर-नागर की आराधना में अपना जीवन व्यतीत किया; किन्तु वह पति की मृत्यु के बाद सती न हुअी । मीरॉं ने अलौकिक पति-कृष्ण-से अपना नाता जोड़ लिया था ।

भक्ति के आवेग में मीरॉं से जब राजकुल की मर्यादाओं का उल्लंघन होने लगा, तब उसे परिवार के लोगों ने खूब समझाया, परंतु उसने एक न माना । परिणामतः उसे मार डालने के लिए विष का प्याला भेजा गया । वह उसे पी गई । मीरॉं पर उसका कोई असर न हुआ । उसे मारने के लिए डिब्बे में काला नाग भी दासी के हाथों भेजा गया; किन्तु मीरॉं की अनन्य भक्ति के कारण वह सालिगराम की मूर्ति में परिवर्तित हुआ । मीरॉं का लोक-लाज का त्याग, राजकुल की मर्यादाओं का उल्लंघन, साधुसंगति में कृष्णभक्ति का गानकरना आदि बातों से उसका देवर विक्रमजीत चिढ़ने लगा । उसने मीरॉं को अनेक प्रकार से कष्ट दिए । किन्तु मीरॉं अपने संकल्प परदृढ़ रही और रातदिन हरि-चर्चा, कीर्तन एवं साधुसंगति में लीन रहने लगी । तब लोग उसे पागल कहने लगे । सास ने उसे "कुलनासी" तक कहा । मीरॉं ने इन बातों की परवाह नहीं की । उसने भक्ति को ही अपने जीवन का लक्ष्य माना । अपने संघर्षमय जीवन का डटकर सामना करते हुए उसने अपने आराध्य देव कृष्ण को सर्वस्व समर्पित कर दिया ।

मीरॉं का अपने आराध्य से सीधा संबंध था । उसे किसी गुरु के माध्यम की आवश्यकता नहीं थी । इसलिए उसके गुरु और प्रियतम गिरधर कृष्ण ही रहे । मीरॉं ने अनेक तीर्थस्थानों की यात्राएँ की थीं । उनमें प्रमुख पुष्कर, वृंदावन, चित्तौड़, अजमेर आदि यात्राएँ थीं । मीरॉं अंत में रणछोड़जी की मूर्ति में समा गयी । उस्का निधन संवत् 1603 में हुआ था ।

मीरॉं एक भावुक भक्त एवं लोकगायिका थी । वह इष्टदेव को रिझाने के लिए प्रेमविभोर होकर अपने पदों को गाती थी । उसके जीवनकाल में यही पद दूर-दूर के प्रदेशों में लोकप्रिय हो गए थे । मीरॉं के ये पद उसके जीवन की अमूल्य निधि है। मीरॉं के पदों में उसके "फुटकर पद" ही सुनिश्चित रूप से प्रामाणिक माने जाते हैं । उसकी "पदावली" भी सर्वाधिक विश्वसनीय कृति मानी गयी है । मीरॉं के पदों की संख्या दो सौ तक है, इसकी भाषा गुजराती, राजस्थानी और राजस्थानी ब्रजमिश्रित है ।

"द्वितीय अध्याय" में मैंने "भक्तिकालीन" परिस्थितियों का विवेचन किया है। किसी भी कवि की कृतियों का अध्ययन करने के लिए उस युग के राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक, दार्शनिक, साहित्यिक आदि का अध्ययन सहायक होता है । क्योंकि कवि की कृतियों पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है । मीरॉं पर भी तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य है । यह युग मुगल शासकों का युग था । पूरा भारतवर्ष अनेक छोटे-छोटे हिस्सों में बँट गया था । भारत पर हमेशा आक्रमण होते थे । आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य शक्तिप्रदर्शन, सत्ता और सुन्दरी की प्राप्ति था । आपस के आक्रमणों के कारण यह युग राजनीतिक दृष्टि से अशांत, असुरक्षित बना था ।

मुगल शासन में जनता पराधीन बनी थी। उनमें रहा-सहा गौरव और अभिमान नष्ट हुआ था । राजा का कठोर दण्ड, महामारी, दारिद्रय, अकाल आदि के कारण प्रजा का जीवन संत्रस्त बना था । नारी को एक दान की वस्तु के रूप में देखा गया ।

इस युग में नारी को पर्दा, बालविवाह, सती,जौहर आदि प्रथाओं का पालन करना पड़ा।

लोगों में अंधश्रध्दा और उँचनीचता की भावना थी । सामाजिक दृष्टि से हिन्दू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों और विचारधाराओं में संघर्ष था ।

इस युग में न चाहते हुए हिन्दुओं को मुसलमान धर्म स्वीकारना पड़ा । फलतः हिन्दू समाज बलहीन होता गया । मुगल शासकों ने अपने धर्म का प्रचार-प्रसार ही नहीं किया; अपितु हिन्दुओं के मंदिर, तीर्थक्षेत्र आदि को ध्वस्त करने का क्रम जारी रखा । हिन्दू धर्म में अनेक संप्रदायऔर पंथ निर्माण हो गये । हिन्दू धर्म की नयी चेतना " भक्ति-आंदोलन " के रूप में प्रचलित हुअी । इसमें वैष्णवों और सूफ्यों की प्रधानता रही ।

जनता आर्थिक दृष्टि से सुखी नहीं थी । राजा लोग प्रजा का शोषण करते थे । लोगों के पास उपजीविका का कोई साधन नहीं था ।

इस युग की भक्ति-भावना दार्शनिक परंपरा पर आधारित थी । इस भक्तिमें वैदिक धर्म को प्रमाण माननेवाली धारा में अनेक व्याख्याता हो गए; जिन्होंने अपना-अपना अलग दृष्टिकोण स्पष्ट किया था । इस्काल का संपूर्ण काव्य भक्ति-भावना से प्रेरित था । यह काव्य विशाल और व्यापक था सूरसागर, रामचरितमानस, पद्मावत आदि अमर काव्यों की रचना इसी काल में हो गयी थी । साहित्यिकता की दृष्टि से सब से महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस युग का साहित्य हृदय, मन और आत्मा को तृप्त करनेवाला था । यह साहित्य भारतीय संस्कृति, धर्म, आचार-विचारों पर आधारित था ।

सांस्कृतिकता की दृष्टि से भी यह युग महत्वपूर्ण रहा है । क्योंकि इस युग में संगीत, स्थापत्य, शिल्प, चित्रकला आदि कलाओं में प्रगति हो गयी थी । संगीत, चित्र, स्थापत्य एवं शिल्प आदि कलाओं में हिन्दू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों का समन्वय हो गया था ।

मेरे "लघु शोध-प्रबंध" का "तृतीय अध्याय" है - "भक्ति का स्वरूप" ।

मनुष्य अपनी विचारशक्ति के कारण सभ्य बना । वह समाज में संगठित हुआ । उसने समाज में नैतिकता लाने के लिए शक्तिशाली सत्ता की कल्पना की और वह उसे "ईश्वर" के रूप में देखने लगा । उसके मन में "ईश्वर" के स्वरूप-संबंधी जिज्ञासा पैदा हो गयी । वह उसे प्राप्त करने की कोशिश करने लगा ।

ईश्वर की प्राप्ति के लिए उसने "साधना" के अलग-अलग मार्गों का अवलंब किया; किन्तु इनमें से सब से सुलभ, सहज और सबके लिए उपलब्ध ऐसे "भक्तिमार्ग" को श्रेष्ठ माना गया ।

भारतीय साहित्य में ईश्वर के प्रति अनुराग, निःस्वार्थ प्रेम, श्रध्दा या अनुरक्ति को भक्ति कहा गया है । भक्ति के मुख्य रूप से दो भेद किए गए - सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति । साधन और साध्य पक्ष के आधार पर भक्ति के दो भेद माने गए - गौणी भक्ति और परा भक्ति । गौणी भक्ति में पुनः दो भेद थे - वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति । वैधी भक्ति में शास्त्रोक्त विधि-नियमों का पालन किया जाता था;किन्तु रागानुगा भक्ति में किसी शास्त्रीय विधि-नियमों का पालन नहीं किया जाता था। इसलिए रागानुगा भक्ति को अधिक महत्वपूर्ण माना गया । पराभक्ति में भक्त ईश्वर के प्रति पूर्ण अनुराग की दशा प्राप्त करता था ।

भक्ति के सभी वर्गीकरणों में "भागवत" की "नवधा भक्ति" लोकप्रिय थी । "नारद-भक्ति सूत्र" की भक्ति की ग्यारह आसक्तियों को महत्वपूर्ण माना गया । भक्ति के अनेक भेदों में "माधुर्य भक्ति" को श्रेष्ठ स्थान मिला । इस भक्ति में भक्त और भगवान के बीच रागात्मक संबंध स्थापित किया गया ।

भक्ति की शुरुआत वैदिक युग से हुआ । भक्ति का स्वरूप उपनिषदों में अधिक स्पष्ट हुआ है । "गीता" में "निष्काम भक्ति" को अधिक महत्व दिया गया । आगे चलकर जैन और बौध्द धर्म का प्रचार हुआ । बौध्द धर्म के विरोध में शंकराचार्य जी ने अद्वैतवाद की स्थापना की । अद्वैतवाद के विरोध में वैष्णव आचार्यों ने भक्ति का आंदोलन चलाया । उसमें रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत, निम्बार्क ने द्वैताद्वैत, मध्वाचार्य ने द्वैत और वल्लभाचार्य ने शुध्दाद्वैत के तत्वों का स्वीकार किया । उसके बाद भक्ति का क्षेत्र विस्तृत बनकर भक्ति के विभिन्न संप्रदायों में फूलवित और विकसित हुआ ।

"चतुर्थ अध्याय" में मैंने "आ॰परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित "मीराँबाई की पदावली" में लक्षित भक्ति-भावना के विभिन्न रूपों का विस्तृत विवेचन किया है ।

मीराँ भक्त थी । भक्ति की साकार मूर्ति थी । उसने किसी दार्शनिक परंपरा या भक्ति संप्रदाय का स्वीकार नहीं किया था । इसलिए उसका प्रत्येक पद उसके प्रेमी हृदय की सच्ची कथा बना है । उसके जीवन का एक मात्र कर्तव्य "गिरधर नागर" को रिझाना है । इसलिए उसकी भक्ति सहज और स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त हो गयी है ।

मीराँ उदार भक्त थी । वह स्वच्छंद विचारधाराओं से युक्त थी । उसके मनपर जैसा भी प्रभाव पड़ा, भावों में जिस प्रकार की हिलोरें उठीं उसी प्रकार से उसने अपने आराध्य का वर्णन किया है ।

मीराँ की भक्ति प्रेम-भाव की भक्ति है । उसका प्रेम गोपियों का-सा है । उसका आराध्य भगवान श्रीकृष्ण है । मीराँ स्वयं साधिका है । वह स्वयं स्त्री है । उसनें अपने प्रियतम कृष्ण को स्वयं प्रियतमा बनकर पाया है । मीराँ ने अपनी भक्ति की परिपूर्णता के लिए "नवधा भक्ति" के साधनों को अपनाया है ।

मीराँने श्रीकृष्ण के प्रति इतना घनिष्ठ संबंध स्थापित किया है, जिससे "सूरज-घामा" की भाँति दोनों में रहा-सहा अंतर मिट गया है और वह कृष्णमयी हो गयी है । मीराँ नारी है, इसलिए इसका "माधुर्य भाव" अत्यंत सहज, स्वाभाविक और मार्मिक है । जिस प्रकार व्रज की गोपियाँ माधुर्य भाव से कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पितचुकी थीं, उसी प्रकार उसी गोपी-भाव से मीराँ ने स्वयं को उसी गिरधर के हाथों बेमोल बेच दिया है ।

मीराँ श्रीकृष्ण के रूप-सौंदर्य से मोहित होकर आत्मविस्मृत बन जाती है । वह अपने आराध्य की विरहिणी है । वह अतृप्त तथा प्यासी विकल वेदना में घूमती है । उसका वियोग चकवी-चकवे का-सा है । मीराँ का आत्मसमर्पण सूर आदि भक्तों से भिन्न है । मीराँ ने अपने प्रिय को रिझाने के लिए सब कुछ तो किया है । वह श्रीकृष्ण की सेविका है । सब प्रकार से अपने प्रिय को प्रसन्न करने का उसने प्रयत्न किया है । श्रीकृष्ण को अपना बना लेना ही उसका मुख्य ध्येय है । मीराँ की माधुर्य भक्ति सब से उत्कृष्ट है । वह अविनाशी प्रियतम कृष्ण की जन्म-जन्म की साथी है ।

मीराँ की भक्ति में "नारद-भक्ति-सूत्र" की आसक्तियाँ भी मिलती हैं । मीराँ की भक्ति श्रीकृष्ण के प्रति आसक्ति से ही शुरु हो गयी है । मीराँ में श्रीकृष्ण के शक्ति, सौन्दर्य, गुण आदि के प्रति शारीरिक, मानसिक और आत्मिक आकर्षण है ।

मीराँ ने अपनी भक्ति में तीव्रता और वैचित्र्य प्रदान करने के लिए निर्गुण भक्ति-भावना की कुछ विशेषताओं को अपनाया है; किन्तु मीराँ के आराध्य श्रीकृष्ण में औरनिर्गुण ब्रह्म में संयोग वश साम्य दिखायी देते हुए भी दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है । मीराँ का आराध्य सगुण है, तो सन्तों का आराध्य निर्गुण ।

मीराँ की भक्ति का आदर्श उच्च है । वह अपनी प्रेम-पीडा का आस्वादन निरन्तर आनंदपूर्वक करती रही है । उसके जीवन, आदर्श और काव्य में पवित्रता है ।

मीरॉं की पवित्रता, आराध्य के प्रति अनन्य भक्ति, आत्मसमर्पण की भावना आदि के कारण वह पूजनीय बनी है ।

भक्ति-भाव के क्षेत्र में मीरॉं का भक्ति-भाव भक्ति-साधना के सर्वोच्च शिखर की उच्चतम भावभूमि से शुरु हुआ है, जिसमें मीरॉं और श्रीकृष्ण के बीच माधुर्य भक्ति का सरल, सरस संबंध स्थापित हुआ है । मीरॉं की अपने आराध्य कृष्ण के प्रति एकनिष्ठता, अनन्य शरणागति, लौकिक जीवन और सांसारिक संबंधों के प्रति उदासीनता,साधु-सत्संग, सदाचार से युक्त पवित्र जीवन, विरह-साधना से युक्त प्रेमभाव,आत्मसमर्पण आदि के कारण मीरॉं हिंदी साहित्य की ही नहीं भारतीय साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री बनी है । संसार का कोई भी साहित्य उस पर गर्व कर सकता है ।